संपादकीय

"इसलिए प्रधानमंत्री लेते हैं निर्णय
तब हम काँप जाते हैं
क्योंकि हम जान गए हैं कि प्रधानमंत्री जो लेते हैं निर्णय
उसमें हम नहीं होते हैं
हम कहीं नहीं होते हैं।"

-उमाशंकर चौधरी, 'वे तुमसे पूछेंगे डर का रंग'

भारतीय लोकतंत्र कई सालों से तब्दीली के रास्ते पर चला आ रहा है। पहले, धर्मनिरपेक्ष समाजवादी सपनों को लेकर वह आगे बढ़ रहा था, लेकिन तानाशाही-फांसीवादी-पूँजीवादी धक्कों-मुक्कों के कारण उपर्युक्त मूल्य घिसने और मिटने लगे और आज भारतीय लोकतंत्र एक खास मुकाम पर टिका है। मीडिया आज लगभग सत्ता के पक्ष में हो गया है; वह सत्य को ढाल बनाकर झूठ की लड़ाई लडता है। दूसरी ओर भूमण्डलीकरण-बाज़ारीकरण-उदारीकरण हैं जो सत्ता पर प्रभुता जमा रहे हैं या सत्ता उन्हीं की ओर बडी मात्रा में झुकी हुई है। परिणाम राष्ट्र राज्य के नागरिक/सिविल सोसाइटी भोग रही है। आजकल सिविल सोसाइटी जागने लगी है, मानवाधिकार, राईट टू इनफोर्मेशन आदि के बल पर एन.जी.ओ. नागरिक को जगा तो रहा है, मज़बूत भी करता है। कई कोणों से, कई तरह के दबाव समानांतर रूप से इसे भी क्षीण करते आ रहे हैं।

आज के लोकतंत्र में से तंत्र ताकतवार हो रहा है और लोक (लोग) कर्ता की जगह पर विशेषण बनता जा रहा है। याने तंत्र के मायावी प्रभाव में लोक धूमिल हो गया है। वह पांच साल में एक दिन का मेहमान बन रहा है; उससे बढ़कर उसके जीवन और भविष्य पर अपना अधिकार नहीं रह गया है। पूँजीवादी-फासीवादी-तानाशाही ताकतें सारा निर्णय लेती हैं। चुनाव एक अनुष्ठान बन गया है। चुनाव क्षेत्र हर तरह की बुरी ताकतों का, करतूतों का लोक (जगह) बन गया है।

साहित्य इसका रेखांकन करते हुए अपना विरोध व प्रतिरोध दर्ज करता आ रहा है। वह जनता को बांटने के पक्ष में नहीं, उसके लिए मनुष्य ही प्रमुख है। इसलिए वह यहाँ की राजनीतिक हलचलों एवं उथल पुथल को, उसके मानव-विरोधी रुझानों एवं प्रवृत्तियों को, उसके अन्तर्विरोधों को उघाडने का प्रयास कर रहा है। उसके दौरान अल्पसंख्यक, दलित, आदिवासी, स्त्री, पर्यावरण पर भी चर्चा कर रहा है। आज अल्पसंख्यक होना गुनाह है, माओवादी होना गुनाहकार होना है, यहाँ तक कि स्त्री/युवती होना तक। यहाँ चारों ओर जन का खून पीनेवाले जोंक है। जनता द्वारा बिठायी सरकार उसी जोंक की ताफदारी कर रही है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नजर डाले तो कबीरदास को लोकतंत्र के लिए आवाज़ उठानेवाले कवि के रूप में पढ सकते हैं। फिर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द, निराला, हरिशंकर परसाई, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भीष्म साहनी, श्रीलाल शुक्ल, गिरिराज किशोर आदि अनेक लेखकों की पंक्ति दिखाई देती है। ये रचनाकार लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्विरोधों पर फोकस करके प्रकाश उत्पन्न करते हैं, जिसकी लौ से जनता अपने अधिकारों की पहचान कर सकें। यही इस विशेषांक का अभीष्ट है।

पी. रवि

अनुक्रम

संपादकीय		
भारतीय लोकतंत्र और हमारे बुद्धिजीवी	दिनेश कुशवाह	7
लोकतंत्र और साहित्य	बजरंग बिहारी तिवारी	14
आखिर हमारे लोकतंत्र का भविष्य.....	के.के. वेलायुधन	25
लोकतंत्र और कविता	एम. षण्मुखन	33
लोकतंत्र का बिगडता व्याकरण : समकालीन कवि की चिन्ता	शान्ती नायर	39
मनुष्यता का नया विश्वास : त्रिलोचन की कविता का लोकतंत्र	वीरेन्द्र मोहन	46
रघुवीर सहाय का लोकतंत्र	के.जी. प्रभाकरन	57
उपन्यास और लोकतन्त्र	मैनेजर पाण्डेय	64
लोकतंत्र के आइने में दलित : समकालीन हिन्दी उपन्यासों के संदर्भ में	सरिता टि.एस.	87
समकालीन हिन्दी कहानी में लोकतंत्र	विष्णु तंकप्पन	92
लोकतंत्र विमर्श और सर्वेश्वर के नाटक	के. अजिता	96
अन्धेर नगरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	100